भारतीय चित्रकला में वैचारिक प्रयोग

प्रो॰ अजय कुमार जैतली
विभागाध्यक्ष
दृश्य कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

मंजू यादव
शोध छात्रा
दृश्य कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

सारांश *– भारतीय चित्रकला अपनी प्रकृति व संरचना द्वारा स्वंय में निहित विशेषता दर्शाती है, जिसमें सदियों से अनेक धाराओं, नई प्रवृत्तियों, शैलियों व माध्यमों का समय के साथ समायोजन होता रहा है। यह समय के साथ परिवर्तित भी होते रहें हैं। कला में यह परिवर्तन और समायोजन आज भी जारी है।*

चित्रकला में अमूर्तन की प्रवृत्ति बिल्कुल भिन्न रही है। उसकी मूल प्रवृत्ति सदैव से ही यह है कि वह प्रस्तुत यथार्थ को जानने, समझने तथा दिखाने का प्रयास कभी नही करती है, जो हमारी चाक्षुष नजरों से दिखायी देता हो। बल्कि वह चित्र के पीछे छिपे हुए यथार्थ तक ले जाने का प्रयास करती है, जो रंगों व अरूपाकारों द्वारा हमारे भाव को उद्वेलित कर अन्तहीन सत्य तक पहुँचाती है। आज कलाकारों द्वारा वैचारिक रूपी अमूर्तता को प्रमुखता से अपनाया जा रहा है। इसके पीछे का कारण यह है कि, इसमें सौन्दर्यानुभूति कराने की असीम स्वतंत्रता रहती है। साथ ही चित्रकारो द्वारा अपने सृजनात्मक भावों को व्यक्त करने के लिये विभिन्न तकनीको का प्रयोग भी किया जा सकता है। वस्तु निरपेक्षता या अमूर्तन का भाव हमें आदिम कला से ही सौन्दर्य के रूप में दिखायी देता है। आधुनिक अमूर्त कला में भी यह भाव आकृति में समाहित है। आदिम कलाकृतियों पर गौर करें तो हम पायेंगे कि सीमित साधनों एवं संघर्षमय जीवन के बावजूद उन्होंने जिस तरह से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है, वास्तव में वो अद्‌भुत है। किन्तु अमूर्त रूपों का सोच समझकर प्रयोग आधुनिक युग में ही शुरू हुआ। जहाँ आधुनिक अमूर्त कलाकारों ने कलाकृतियों में सौन्दर्य दिखाने के लिये रेखा, रंग, रूप, तान, पोत, अन्तराल आदि तत्वो का समायोजन कर सृजन करना आरम्भ किया। कलाकार का सदैव यह उद्‌देश्य रहा कि वह कुछ नया सृजन करें, जिसमें सुख की अनुभूति हो। कलाकारों को नये सृजनात्मक मनोभावों के लिये परम्पराओं की ओर देखना पड़ा और कलाकारों ने प्रागैतिहासिक कला एवं संकेतो से सीख ली। व्यक्तिगत दृष्टिकोण अपनाकर उन प्रतीकों एवं संकेतो के माध्यम से नवीन कला शैली को जन्म दिया, जो समकालीन है, जिन्हें अमूर्त चित्रण शैली कहा जा सकता है तथा यह पूर्णतः वैचारिक है।

मुख्य शब्द *– अमूर्त चित्रकला, वस्तुनिरपेक्ष कला, समकालीन वैचारिक कला, वैचारिक प्रयोग।*

प्रस्तावना

चूकि आज का युग औद्योगिक एवं वैज्ञानिक विकास का युग है। जहाँ तकनीकि विकास ने मानव मस्तिष्क एवं हृदय को बहुत ही गहनता से प्रभावित किया है। इससे कलाकार भी अछूते नही रहें। जहाँ पहले चित्र के विषय–वस्तु में रूप एवं आकार महत्वपूर्ण होते थे, आज वही चित्रकार रूप एवं आकार को त्यागकर रंग, टेक्स्चर, लिपि, ज्यामितिय एवं प्रतीकात्मक चिह्नों पर आश्रित कला सृजन की ओर आकर्षित हो रहा है। रूढ़िवादी परम्परा की जंजीरों ने जिस प्रकार भारतीय कला को जकड़ रखा था, उससे विमुक्त होने की प्रक्रिया ही अमूर्त एवं अन्य कला विधाओं के जन्म का कारण बनी।[1] इसीलिये अमूर्त चित्रकला के

विषय में यह भी कहा जाता है कि इसको देखने व समझने के लिये दर्शको का बौद्धिक ज्ञान भी मायने रखता है। तभी वह अमूर्त कलाकृति का रसास्वादन कर पायेगा। वरना उसके लिये ऐसी कृतियाँ सदैव ही उबाऊ होगी।

अमूर्तन चूकि पूर्णतः वैचारिक है, जहाँ वस्तु निरपेक्षता का भाव प्रदर्शित होता है। जहाँ मूर्त चित्रकला में चित्रकार के लिये यथार्थ रूप एवं आकार महज उस स्थूल उपकरण के समान रहा है, जिसके सहारे वह किसी अज्ञात व्यक्ति या वस्तु के स्वरूप यथा नाक–नक्श पहचानने की कोशिश करता था। लेकिन अमूर्त चित्रकला इस तर्क से बहुत ऊपर तक इसे ले जाती है। वह किसी भी प्रकार के रंग–रूप एवं आकार से परे है। वह उस अज्ञात को ढूँढने का प्रयास है, जिसका स्वरूप ही निश्चित नही है। इसलिये इसे कुछ जाने पहचाने रूपाकारों द्वारा ढूँढने का प्रयास करना सर्वथा ही निरर्थक है। अमूर्त चित्रकार अज्ञात के अँधेरे में अपरिभाषित आकारों व प्रतीकों द्वारा सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। किन्तु वह कभी यह नही कह पाता कि अँधेरे में कुछ अरूपाकारों व प्रतीकों रूपी तीर द्वारा उसने सत्य को पा लिया है। क्योकि अमूर्त कला में एक अन्तहीनता है, जो शायद ही कभी एक संतुष्ट निष्कर्ष के साथ समाप्त हो पाये। हालांकि अमूर्त चित्राकृतियों में सम्प्रेषण की समस्या सदैव से ही विद्यमान रही है। जब किसी चित्राकृति का संदेश स्पष्ट नही दिखता तो दर्शक उसके पीछे के सत्य को जानने के लिये उस कृति के तह तक जाने लगते है, किन्तु अन्ततः अज्ञात की ओर अग्रसर वह चित्र विषय हताशा का एहसास दिलाता है। जिससे बेचैनी जन्म लेती है। लगभग यही भाव प्रत्येक अमूर्त चित्रों को देखकर उपजते होंगे।

भारतीय चित्रकला में अमूर्तन

चित्रकला में विरूपण या अमूर्तन का प्रयोग आदिम कला के आरम्भ के साथ ही हो गया था। भारत में आदिम कला का इतिहास मध्य प्रदेश की भीमबेटका व अन्य शिला चित्रों तथा उत्तर प्रदेश की गुफाओं में बने पशुओं के रेखांकन एवं चित्रांकन से प्रारम्भ होकर तांत्रिक उपासना तक गया है।[2] जिसमें मुख्य रूप से ज्यामितिय आकारों का प्रयोग कर स्वास्तिक, चक्र, त्रिशूल, वृक्ष, पशु–पक्षी आदि चित्रित किये गये हैं। जिससे ज्ञात होता है कि आदिम कला में प्रतीकात्मक, अर्मूत अभिव्यक्ति है। आदि मानव द्वारा बनायी गयी ये कलाकृतियाँ उनके जीवन के संघर्षों और उनकी भावनाओं की सजीव प्रस्तुति हैं। मानवों ने इन चित्रों में रेखाओं और आकारों द्वारा अपनी आत्म प्रगति को दर्शाया है। शिला चित्रों से मिले अवशेषों और साहित्यिक स्त्रोंतो के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि, भारत में कला की एक विधा के रूप में चित्रकला आदिकाल से प्रचलित रही है। जहाँ कलाकारों ने स्वतंत्र भावाभिव्यक्ति की है।

हालांकि मानव के बौद्धिक विकास के पश्चात् कला का स्वरूप बदला। जिसके फलस्वरूप अनेक कला धाराओं का प्रचलन बढ़ा। यही कला धारायें अपना रूप परिवर्तित करते हुये आज हमारे सामने उपस्थित हैं। वर्तमान भारतीय कला परिदृश्य में मुख्य रूप से दो तरह की कला प्रवृत्तियाँ दियायी देती हैं। प्रथम प्रकार की प्रवृत्ति में वे कलाकार आते है, जो वस्तु परक विषयों का यथार्थ चित्रण करते हैं। तो वहीं द्वितीय प्रकार उन कलाकारों का है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक वस्तुओं से दूर रहकर चित्रण करतें हैं। अर्थात् भौतिक तत्वों से रहित वस्तु निरपेक्ष चित्रण करते हैं। जो किसी कलाकार की वैचारिक प्रवृत्ति का द्योतक है। वर्तमान कलाकार वस्तु–निरपेक्ष गुणों अर्थात् रेखा, रंग, धरातल आदि कलागत तत्वों के साथ–साथ प्रयोगात्मक पद्धति एवं विचार को आधार बनाकर कार्य कर रहे है। एब्स्ट्रैक्ट या अमूर्त चित्रों की रचना करते हुए चित्रकार संसार में उपलब्ध आकृतियों को नकारते नहीं है, बल्कि वह उन संसार में मौजूद आकृतियों, रूपाकारों को अपनी व्यक्तिगत इच्छानुसार किन्हीं रूप में ढालते हैं, जोकि उस कलाकार की व्यक्तिगत विशेषता के साथ चित्रित होती है।

भारत में के॰ सी॰ एस॰ पन्निकर ऐसे प्रथम कलाकार माने जाते है, जिन्होंने चित्रकला में आकृतिमूलक चित्र की परम्परा को तोड़ा था। इनके चित्रो में रंग–प्रवाह, प्रतीक तथा रेखाओं का अद्‌भुत प्रयोग हुआ है, जो हमें अमूर्तता की ओर अग्रसर करता है। हालांकि जिस समय इन्होंने अमूर्तन को अपने चित्रों का आधार बनाया, तब इन्हें रूढ़िवादी कलाकारों व कला विद्वानों के विरोध का सामना भी करना पड़ा था। क्योकि उस समय चित्रकला में वस्तु–निरपेक्षता को मान्यता नही प्राप्त थी। अतः इन्होंने चोल मण्डल ग्राम की स्थापना की, जहाँ प्रत्येक कलाकार को स्वतंत्र होकर भावाभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। इस संदर्भ में डॉ॰ आनन्द कुमार स्वामी का कथन सत्य प्रासंगिक होता है कि–''कलागत स्वतंत्रता का तात्पर्य किसी व्यक्ति को उसके अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करने का अवसर प्रदान करना है।''[3] ऐसा स्वतंत्र वातावरण के॰ सी॰ एस॰ पन्निकर द्वारा चोल मण्डल के कलाकारो को प्रदान किया गया। (चित्र सं॰ 1)

पन्निकर के पश्चात् भारतीय चित्रकला में अमूर्तन का शुद्ध रूप से प्रयोग वी॰ एस॰ गायतोण्डे की चित्रकला में दिखायी देता है। यह भारतीय चित्रकला में ऐसी शख्सियत के रूप में रहे, जिन्होंने अमूर्तन को एक नई शैली के रूप में प्रसिद्धि दिलायी। इनके लिये अमूर्तन कोई प्रयोग या प्रचलन नही था, बल्कि वह रंगों के स्वभाव में उतरने की और किन्हीं अन्तर्निहित रूपाकारों की अपूर्ण पहचान को प्रत्यक्ष करने की एक प्रक्रिया थी। उनके चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि, उनके द्वारा बनाये गये अमूर्त रूपाकार, लिपियाँ, और प्रतीकात्मक चिन्ह् हमसे कह रहे है कि, हम उन्हें किन्हीं विशेष अर्थों में ना बाँधे। बल्कि उनके अर्थों को अन्तहीन ही रहने दें। क्योकि ''अरूप चित्र किसी भी देश, काल, परिस्थिति की सीमा से मुक्त होते है।'' ये चित्र विषय मुक्त है। अरूपवादी चित्रकार बाह्म जगत् की सारी सीमाओं को, यथार्थ को, वस्तुओं और दृश्यों को भूलकर अपनी आत्मा, अपने अचेतन, अपने अस्तित्व में प्रवेश करता है, और तब एक नये रूप, नये अस्तित्व को अपने अरूप चित्र में प्रस्तुत करता है।[4] (चित्र सं॰ 2) पश्चिमी यूरोपीय देशों से लेकर भारत में ऐसे अनेक चित्रकार हुए, जिन्होंने अमूर्तन में अभूतपूर्व प्रयोग किये। समकालीन कला जगत में वैचारिक रूपी अमूर्तन की राह पर चलने वाले अनेक कलाकार उपस्थित हैं, जिन्होंने अर्मूतन को कला का पूरक बना दिया। रजा, जहाँगीर सबावाला, गायतोण्डे, अम्बादास, शान्ति दवे इत्यादि जैसे अनेक कलाकारों ने चित्रकला में अमूर्तन का शुद्ध रूप से प्रयोग करते हुये भारतीय चित्रकला को नई दिशा दिखाते रहें।[5] जहाँ इनके अरूपवादी चित्रों की कोई वस्तुगत और विषयगत व्याख्या नही की जा सकती। केवल इनमें निहित भावों को महसूस किया जा सकता है। (चित्र सं॰ 3, 4 एवं 5)

निष्कर्षतः कलागत तत्वों का विरूपण, वैचारिक व बौद्धिक सक्षमता से परिपूर्ण अमूर्त चित्रकला की राह भारत में आसान नहीं रही। इसे समय–समय पर कला आलोचकों व कला विद्वानों के विरोधों का सामना करना पड़ा। क्योंकि कला विद्वानों का अमूर्त चित्रकारों के सम्बन्ध में यह मानना था कि, अमूर्त चित्राकृतियों का सृजन करने से पहले स्वंय चित्रकार को अमूर्तता की समझ अवश्य होनी चाहियें। ना कि उसकी अमूर्त चित्राकृति किसी प्रसिद्ध कलाकार की नकल करने के उद्‌देश्य से व कला बाजार में बने रहने की होढ़ में बनायी गयी हो। चूंकि आज के युवा कलाकार ऐसे रूपाकारों को अपना रहे है, जो बहुअर्थी है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि आज कला बाजार में आयी हुई तेजी, जहाँ बिक्री के अवसर बढ़े हैं। और यह अवसर व्यवसायिक कला दीर्घाओं की बढ़ती हुई संख्या व विदेशी खरीददारों के कारण सम्भव हो पाया है।[6] आधुनिक चित्रकारों पर यह भी आरोप लगते रहें हैं कि वह 'आधुनिक चित्रकार' कहलाने की चाह में अमूर्तन तथा विरूपण का प्रयोग कर रहें हैं। जबकि उन्हें अमूर्तन की समझ तक नही है, तो वही कुछ चित्रकार अमूर्तन को बिना जाने–समझे सिर्फ पाश्चात्य कला की नकल कर रहें हैं। बहरहाल भारत में अमूर्त चित्रण विधा आज आधुनिक कला शैली के रूप में उभरी है। जो प्रत्येक कलाकार को सम्मोहित कर रही है। जहाँ कलाकार आन्तरिक नेत्रों द्वारा किसी वस्तु के स्वभाव, गुण को महसूस करते हुये, उसके मूल भाव को चित्रित करने की कोशिश कर रहा है।

चित्र संग्रह

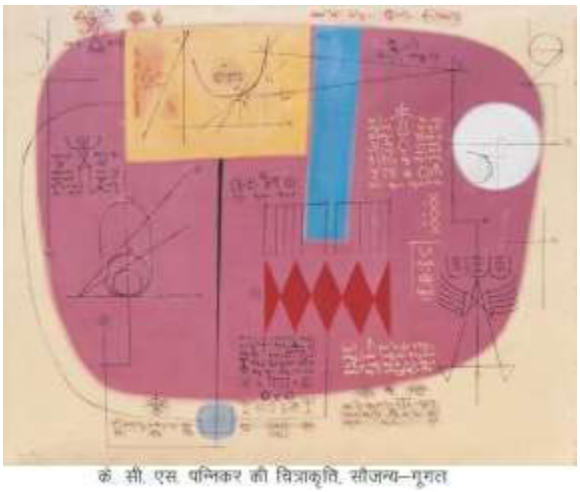

के. सी. एस. पन्निकर की चित्राकृति, सौजन्य–गूगल

(चित्र सं॰ 1)

अम्बादास की चित्राकृति

(चित्र सं॰ 3)

वी एस गायतोण्डे की चित्राकृति, सौजन्य– गूगल

(चित्र सं॰ 2)

शान्ति दवे की चित्राकृति

(चित्र सं॰ 4)

सूर्य नमस्कार–रजा, सौजन्य–गूगल

(चित्र सं॰ 5)

संदर्भ

[1] स्नेहलता भारतीय, शोध प्रबन्ध, समकालीन कला– एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृष्ठ सं 10

[2] सीमा चतुर्वेदी, आधुनिक चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में आदिम कला का प्रभाव, समकालीन कला, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, अंक 42 43, पृष्ठ सं 84।

[3] डॉ॰ ज्योतिष जोशी ,रूपंकर : समकालीन कला विमर्श, यश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 21।

[4] राजकमल चौधरी, कला भारती खण्ड एक, चित्रकला की अरूपवादी पद्धति, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ सं 31।

[5] डॉ॰ ज्योतिष जोशी, अमूर्त कला के प्रश्न, समकालीन कला, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक 50, पृष्ठ सं 4–7।

[6] प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला–एक परिप्रेक्ष्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दूसरी आवृत्ति 2011, पृष्ठ सं 196।

7 प्रभाकर बर्वे, कोरा कैनवस, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016।

8 यूसुफ, कला का अध्यात्म, समकालीन कला, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक 24, पृष्ठ सं 33–35।

9 अखिलेश, शीर्षक नहीं, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ सं 105–109।

10 सीरज सक्सेना, आकाश एक ताल है, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण 2018।

11 सच्चिदानन्द सिन्हा, अरूप और आकार, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012।